Since March 2002
A National, Registered, Peer Reviewed & Refereed Monthly Journal
Dance
Research Link - 175, Vol - XVII (8), October - 2018, Page No. 67-69
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण में नृत्य-तत्व

प्रस्तुत शोधपत्र में विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण में नृत्य-तत्व का अध्ययन किया गया है। नृत्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम शास्त्रीय आधार नाट्यशास्त्र को स्वीकार किया जाता है। विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण में वर्णित नृत्य-तत्वों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि नृत्य तत्वों की व्याख्या के दौरान उपपुराणकर्त्ता ने भरत द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों को आधार मानते हुए प्रयोग विधान का विवेचन किया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तृतीय खण्ड 'चित्रसूत्रम्' के सत्रहवें अध्याय से चौंतीसवें अध्याय तक नृत्य विषयक अनेक तत्व दिए गए हैं, जो शास्त्रीय नृत्य-प्रयोग हेतु उपयोगी हैं। यद्यपि ग्रंथ में उक्त अध्यायों के प्राथमिक रुप से किए गए अध्ययन से प्रतीत होता है कि इसमें दिए नृत्य-तत्व नाट्यशास्त्र से प्रभावित हैं तथापि पुराणकालीन नृत्य परम्परा के प्रतिनिधि के रुप में यह ग्रंथ तत्कालीन नृत्य परम्परा के साथ-साथ पूर्ववर्ती परम्परा का भी अनुसरण करता प्रतीत होता है। *कुँजी शब्द : पुराण, सनातन सभ्यता और संस्कृति, धर्म, कला, संस्कृत साहित्य, विष्णुपुराण में नृत्य-तत्व, विष्णु धर्मोत्तरपुराण में नृत्य-तत्व।*

श्रीमती यास्मिन सिंह

भारत का प्राचीन इतिहास, संस्कृति और धर्म का विशद् वर्णन पुराणों से प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ कला के क्षेत्र में भी पुराणों की महति भूमिका निर्विवाद रही है। पुराणों की रचना मूलतः चारों वेदों के आधार पर की गई है, ऐसा विद्वानों का मत है। भारतीय जीवन साहित्य के शृँगार 'पुराण' अतीत को वर्तमान से जोड़ने वाली स्वर्णित शृँखला है। विश्व वाङ्मय की अक्षय निधि में अठ्ठारह पुराण सर्वश्रेष्ठ अठ्ठारह रत्न हैं। ये अपनी सरल सुबोध भाषा और प्रबुद्ध कथानक शैली के कारण अति प्राचीन होते हुए भी नवीनता और स्फूर्ति उत्पन्न करते हैं।

पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि पुराण वस्तुतः वैदिक कथाओं, जनश्रुतियों एवं सृष्टि, विसृष्टि, प्रलय, मन्वन्तर, आचारवर्णन, राजवंश वर्णन के प्रतीक हैं। पौराणिक सूतों के कथनानुसार पुराण तत्त्वज्ञ भगवान वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्पशुद्धि के साथ पुराण संहिताओं की रचना की। पुराणों की इस स्वीकृति से सिद्ध होता है, कि वेदों की भाँति इतस्ततः बिखरे हुए पुराणों को भी संग्रह करके व्यास जी ने अपनी मान्यता के अनुसार उनका संपादन किया। वेद की भाँति आदिकाल में 'पुराणमेकमेवासीत्' अर्थात् पुराण एक ही था। कालान्तर में पुराणों का विभाजन सुतों द्वारा हुआ।(1)

उपपुराण जो ग्रंथ पंचलक्षणात्मक महापुराणों से विषयों के विन्यास तथा देवी–देवताओं के वर्णन में न्यून हैं, परंतु उनसे बहुशः साम्य रखते हैं, वे उपपुराण नाम से अभिहित किए जाते हैं। विद्वानों ने आदित्य (या सौर), उशनस् (या औशनसव), कपिल, कालिका, देवीपुराण, विष्णुधर्मोत्तर आदि अठ्ठारह उपपुराण निश्चित किए हैं। अन्य मतों से इनकी संख्या और भी अधिक है। इनके यथार्थ संख्या तथा नाम के विषय में बहुत मतभेद है। विभिन्न उपपुराणों में धर्म, समाज आदि विभिन्न विषयों का वर्णन तो प्राप्त होता ही है, इसके कलाओं के क्षेत्र में भी वेद और पुराणों की ही भाँति उपपुराणों की नितान्त अनिवार्य भूमिका स्वमेव सिद्ध रही है। इस दृष्टि से विष्णुधर्मोत्तर का नाम विषेष रूप से उल्लेखनीय रहा है। इस उपपुराण में पुराण के सामान्य विषयों के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, स्थापत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, मूर्तिविधान तथा मंदिर निर्माण का भी विवरण मिलता है, जो कला की ष्टि से नितांत रोचक, उपयोगी तथा उपादेय है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण मूलतः विष्णुपुराण का ही द्वितीय भाग है। अतः इसे "उपपुराण" की श्रेणी में अवस्थित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अन्तिम अध्याय की कारिका एवं इसके उपरांत दी गई पुष्पिका में आचार्य ने इस तथ्य का उल्लेख किया है–

"इति श्रीविष्णुमहापुराणे द्वितीयभागे श्रीविष्णुधर्मोत्तरे तृतीयखण्डे मार्कण्डेयवज्रसंवादे श्रीनरसिंहस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चाशदुत्तरत्रिशततमोऽध्यायः।। इति श्रीविष्णुधर्मोत्तरं।। ।। समाप्तं चेदं विष्णुमहापुराणम्।।" (2)

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में राजा वज्र द्वारा जिज्ञासावश पूछे गए प्रश्नों का उत्तर एवं विषयानुसार आवश्यक निर्देशों का प्रतिपादन ऋषि मार्कण्डेय द्वारा किया गया है। इस दृष्टि से यह एक संवादात्मक ग्रंथ है।(3) इसे उपपुराण माना गया है। इस पुराण में अन्य बातों के अतिरिक्त कला और शिल्प का भी विशद वर्णन है। इसमें मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला, वास्तुकला आदि पर ऐतिहासिक महत्त्व के बड़े ज्ञानवर्द्धक अध्याय हैं। विद्वानों का अनुमान है, कि यह पुराण पाँचवी शती में लिखा गया था। अनुमान किया जाता है, कि अजन्ता की गुफाओं में की गई चित्रकारी में इस उपपुराण से प्रायः सम्बद्ध रही हैं।(4)

शोधार्थी (कथक नृत्य विभाग), राजा मानसिंह तोमर कला संगीत विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण में नृत्य संबंधी विभिन्न तत्त्वों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो इससे पूर्व विष्णु पुराण में अपेक्षाकृत संक्षिप्त रूप में निर्दिष्ट किए गए हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि विष्णुपुराण में नृत्य प्रयोग संबंधी तथ्यों का वर्णन किया गया है, तो विष्णुधर्मोत्तर में उसी नृत्य कला के सैद्धान्तिक पक्ष को उजागर किया गया है। इस दृष्टि से विष्णुधर्मोत्तर से पूर्व विष्णुपुराण में वर्णित नृत्य संबंधी तत्वों पर दृष्टिपात प्रासंगिक है।

अठ्ठारह पुराणों में श्रीविष्णुपुराण का विशेष महत्व है। इसे वैष्णव सम्प्रदाय का पुराण भी कहा जाता है। विष्णुपुराण में भगवान विष्णु एवं उनके भिन्न–भिन्न अवतारों के सन्दर्भ में यत्र–तत्र नृत्य का उल्लेख किया गया है। इस पुराण के द्वितीय अंश के दसवें अध्याय में मुनिगणों द्वारा सूर्य की स्तुति, गन्धर्वों द्वारा श्री विष्णु का यशोगान एवं अप्सराओं द्वारा नृत्य किये जाने का उल्लेख किया गया है :

"स्तुवन्ति मुनयः सूर्य गन्धर्वैर्गीयते पुरः।
नृत्यन्त्यप्सरसो यान्ति सूर्यस्थानु निशाचराः।।20।।"[5]

विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश में भी श्री रामचन्द्र के सिंहासनारूढ़ होने का उल्लेख किया गया है, जिसमें लक्ष्मण, भरतादि के साथ–साथ सम्पूर्ण देवगणों, ऋषिगणों सहित चारों वेद–ऋषियों द्वारा नृत्य, गीत एवं विभिन्न वाद्यों सहित अभिषिक्त होने की बात कही गई है–

"लक्ष्मणभारत.....नृत्यगीतवाद्या–द्यखिललोकमंगलवाद्यैर्वीणावेणुमृदंगभेरीपटह– शंखकाहलगो. .....एकादशाब्दसहस्रं राज्यमकरोत्।।99।।"[6]

विष्णुपुराण के पंचम अंश में कालिया दमन और रासलीला का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका वर्तमान शास्त्रीय नृत्यों (विशेषकर कथक नृत्य) में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कथक नृत्य में कथानक के अंतर्गत "कालिया दमन" पर नृत्य करने की परम्परा रही है। इस पुराण में कालिया दमन के दौरान श्रीकृष्ण द्वारा नृत्य किए जाने का उल्लेख सुस्पष्ट रूप से किया गया है, जिसके अनुसार– श्रीकृष्ण ने स्वयं को सर्प के बन्धन से छुड़ाकर अपने दोनों हाथों से उसके बीच के फण के ऊपर नृत्य करने लगे। उस समय श्रीकृष्ण रेचक तथा दण्डपात नामक नृत्यसम्बन्धी गतियों के कारण सर्प मूर्छित–सा हो गया और उसका रक्त बहने लगा।

"आनम्य चापि हस्ताभ्यामुभाभ्यां मध्यमं शिरः।
आरुह्याभुग्रशिरसः प्रणनर्त्तोरुविक्रमः ।।44।।
मूर्च्छामुपाययौ भ्रान्त्या नागः ष्णस्य रेचकैः।
दण्डपातनिपातेन ववाम रुधिरं बहु ।।46।।" [7]

कृष्ण गोपियों के साथ रासक्रीडा प्रारंभ होती है, जिसमें शरद वर्णन सम्बन्धी गीतों के साथ–साथ कृष्णचन्द्र चन्द्रमा, चन्द्रिका और कुमुदवन द्वारा संबंधित गीतों का गान करने का उल्लेख किया गया है। तद्नुसार गोपी द्वारा नृत्य करने की बात स्पष्ट रूप से कही गई है–

"कृष्णाश्शरच्चन्द्रमसं कौमुदीं कुमुदाकरम्।
जगौ गोपीजनस्त्वेकं कृष्णनाम पुनः पुनः ।।52।।
परिवृत्तिश्रमेणैका चलद्वलयलापिनीम्।
ददौ बाहुलतां स्कन्धे गोपी मधुनिघातिनः ।।53।।" [8]

उल्लेखनीय है, कि वर्तमान कथक नृत्य में कालिया दमन पर अनेकानेक प्रयोग एवं नृत्यनाटिकायें प्रदर्शित की जा चुकी हैं। साथ ही, रासनृत्य, जो नटवरी नृत्य के रूप में भी प्रसिद्ध रहा है, का प्रयोग कथक नृत्य प्रस्तुतिकरण में विशेष रूप से लक्षित होता है। पूर्व में कथक नृत्य को नटवरी नृत्य भी कहा गया है, जिसका सीधा संबंध कृष्ण द्वारा गोपियों के साथ किए जाने वाले पुराणों में उल्लिखित 'रासक्रीडा' अथवा 'रासनृत्य' से ही है।

इस प्रकार विष्णुपुराण में नृत्य प्रयोग संबंधी प्रकरणों से यह बात पुष्ट होती है, कि तत्कालीन समाज में नृत्य प्रचलित था, जिसका आधार धर्म रहा होगा। इस काल में नृत्य संभवतः देवताओं द्वारा अथवा देवताओं हेतु किया जाता था। विष्णुपुराण के सादृश्य 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में भी नृत्य से संबंधित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण तीन खण्डों में विभक्त है तथा कला की दृष्टि से इसका तीसरा खण्ड "चित्रसूत्रम्" विशेष महत्व रखता है। इस खण्ड के प्रारंभ में राजा वज्र द्वारा कलाओं के अंतर्संबंध में पूछे गए प्रश्न का समाधान करते हुए आचार्य ने स्पष्ट रूप से कहा है, कि नृत्य शास्त्र के ज्ञान के बिना चित्रसूत्र को समझना कठिन है–

विना तु नृत्य शास्त्रेण चित्रसूत्रं सुदुर्विदम्।
नृत्यशास्त्रं समाचक्ष्व चित्रसूत्रं वदिश्यसि।
नृत्यशास्त्र विधानं च चित्रं वेत्ति यतोद्विज। [9]

तत्पश्चात् आचार्य ने नृत्य विधा के ज्ञान हेतु आतोद्य (अर्थात् वादक कला) का ज्ञान, आतोद्य के ज्ञान हेतु गीत–शास्त्र का ज्ञान एवं गीत–शास्त्र हेतु संस्कृत भाषा, व्याकरण एवं छंद आदि को समझना अनिवार्य बताया है–

"आतोद्येन यो न जानाति तस्य वृतं हि दुर्विदम्।
आतोद्येन विना नृतं विद्यते न कथंचन।।5।।
न गीतेन विना शक्यं ज्ञातुमातोद्यमप्युत।
गीतशास्त्रविधानज्ञः सर्व वेत्ति यथाविधि।।7।।
गीतशास्त्र समाचक्ष्व सर्वधर्म भृतां वर।
गीतशास्त्र विदेवाथ सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः।।8।।
संस्कृतं प्राकृतं चैव गीतं द्विविधमुच्यते।
अपभ्रष्टं तृतीयं चतदनन्तं नराधिप।।9।।" [10]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड/17वें अध्याय में आचार्य द्वारा नायिका भेद का निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त नौ प्रकार के रसों को बताते हुए आचार्य ने इन्हें नाट्य–विधाओं में प्रयोग की बात कही है, जो निम्नलिखित है–

"अतः परं प्रवक्ष्यामि नायिकाष्टकलक्षणम्।
निजापराधात्स्वगृहे वाससज्जा तु नायिका।।56।।
विरहोत्कण्ठिता सैव या त्वनागतनायिका।
स्वाधीन भर्तृका प्रोक्ता या स्यात्स्वाधीन भर्तृका।।57।।
कलहान्तरिता प्रोक्ताकलाहृतनायका।
खण्डिता याच नखरैर्युतमेति प्रगोपतिम्।।58।।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया संकेते कान्तवर्जिता।
प्रवासगतकान्ता तु तथा प्रोषितभर्तृका।।59।
एतासामुचिताकार लीला भिर्बन्धनं घनम्।
नाटकादिषु रूपेषु कर्त्तवयं द्वादशसवपि।।60।।
शृंगाररहास्यकरूणवीररौद्रभयानकाः।
बीभत्सादभुतशान्ताख्या नव नाट्यरसाः स्मृताः।।61।।
बन्धो रसानुगः कार्यः सवैष्वेतेषु यत्नंतः

रसप्रधानमेवैतत्सर्वनाट्यं नराधिपः ।।62।।
एते कलाकौशलशीलयुक्ताः कार्यास्तथा लोक विधानयुक्ताः।
धर्मर्थिकामाद्युपदेशगाश्च हिताय लोकस्य नरेन्द्रचन्द्र।।63।।[11]

उक्त कारिकाओं में आठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन है– वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, स्वाधीनपतिका, कलहान्तरिता, खण्डिता, विप्रलब्धा तथा प्रोषितभर्तृका। शास्त्रीय नृत्यकलाओं में नायिका–भेद एक अनिवार्य विषय के रूप में देखा गया है। विभिन्न शास्त्रीय नृत्य में नायिकाओं को विशेष स्थान प्राप्त है। कथक नृत्य में भी सभी आठ नायिकाओं का कथानुरूप प्रयोग देखा जा सकता है। 'नायिका भेद के कथक शास्त्र की प्रतिभा और सृजनशीलता को नवीन अनुभूतियों व नित नये सृजन से क्रियाशील बनाये रखा है। नायिका भेद के द्वारा कलाकार कथक की काव्य रचनाओं से ही नहीं, वरन् संस्कृत व हिन्दी साहित्य की काव्य रचनाओं से जुड़कर कथक को साहित्यिक, बौद्धिक प्रतिभा से समृद्ध कर सकता है, साथ ही कथक के भाव पक्ष को नवीन कल्पनाओं व सृजनशीलता से उर्वर बना सकता है। नायिका भेद कलाकार की मनोवैज्ञानिक क्षमता का विकास करता है। इसी के आधार पर कथक जिस 'रूप' का विधान करता है, वह बाह्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य के लिए भी होता है। रूप जीवन की आन्तरिक आकांक्षा है, जो आनन्ददायिनी और जीवन्तता का प्रतीक है।'[12]

ऋषि मारकण्डेय नायिका लक्षणों से पूर्व 17वें अध्याय में ही नाटक एवं नायक–प्रतिनायक (सहनायक) के लक्षणों का निरूपण किया है। ग्रंथ के इस अध्याय में रूपकभेद नामक बारह प्रकार के नाटकों का लक्षणसहित वर्णन प्राप्त होता है।[13] इसी खण्ड के 20वें अध्याय में चारी एवं महाचारी के भेदोपभेदों का वर्णन किया गया है। इसके साथ–साथ गतिमण्डल एवं इसके भेद, छत्तीस प्रकार के अंगहारों– **"षट्त्रिंशदेते संप्रोक्ता ह्यंगहारा यदूत्तम"**[14] का निरूपण करते हुए आचार्य ने 108 करणों– **"अष्टोत्तरशतं चैव करणानां प्रकीर्तितम्"**[15] के नाम भी इसी अध्याय में बताये गये हैं। तत्पश्चात् वृत्ति–प्रवृत्ति के भेदोपभेदों का वर्णन किया गया है।[16] उक्त वर्णन के बाद आचार्य द्वारा अभिनयानुसार बैठक व्यवस्था का वर्णन किया गया है तथा इसके पश्चात् हस्त मुद्राओं के अंतर्गत संयुक्त एवं असंयक्त हस्त मुद्रायें बताई गई हैं। ग्रंथ में तेरह संयुक्त हस्त मुद्रायें तथा बाईस असंयक्त हस्त मुद्राओं के नाम बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त नृत्य हस्तों के विषय में भी चर्चा की गई है।[17]

जैसा कि ज्ञात है, कि नृत्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम शास्त्रीय आधार नाट्यशास्त्र को स्वीकार किया जाता है। विष्णुधर्मोत्तर उपपुराण में वर्णित नृत्य–तत्वों के अध्ययन से प्रतीत होता है, कि यह भरत के नाट्यशास्त्र से पूर्णतः प्रभावित रहा है। नृत्य–तत्वों की व्याख्या के दौरान उपपुराणकर्त्ता में भरत द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों को आधार मानते हुए इनका विवेचन एवं प्रयोग विधान का विवेचन किया है।

इस प्रकार विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तृतीय खण्ड "चित्रसूत्रम्" के सत्रहवें अध्याय से चौंतीसवें अध्याय तक नृत्य विषयक अनेकानेक तत्व दिये गये हैं, जो शास्त्रीय नृत्य–प्रयोग हेतु उपयोगी हैं। यद्यपि ग्रंथ में उक्त अध्यायों के प्राथमिक रूप किए गए अध्ययन से प्रतीत होता है, कि इसमें दिये नृत्य–तत्व नाट्यशास्त्र से प्रभावित है, तथापि पुराणकालीन नृत्य परम्परा के प्रतिनिधि के रूप में यह ग्रंथ तत्कालीन नृत्य परम्परा के साथ–साथ पूर्ववर्ती परम्परा का भी अनुसरण करता प्रतीत होता है।

सन्दर्भ :

(1) शास्त्री, रामप्रताप त्रिपाठी, "महामुनिश्रीमद्व्यास प्रणीतंवायुपुराणम्", हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1987, आमुख, पृ. 1.

(2) *दास, श्रीकृष्ण, क्षेमराज (संपादक) : "श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणम्", नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985, खण्ड–3, अध्याय 355, पृ.471.*

(3) *द्विवेदी, डॉ.प्रेमशंकर एवं डॉ.बिन्दू दूबे : "चित्रसूत्रम् (विष्णुध र्मोत्तरपुराण में चित्रकला)", कला प्रकाशन, वाराणसी, 1999, 'वक्तव्य' से उद्धृत।*

(4) *मालवीय, बद्रीनाथ : "विष्णुधर्मोत्तरपुराण में चित्रकला", इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्रा.लि., प्रयाग, 1960, श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा लिखी गई 'भूमिका' से उद्धृत, पृ.1–2.*

(5) *श्रीविष्णुपुराणम्, द्वितीय अंश, अध्याय 10, पृ.140.*

(6) *वही, चतुर्थ अंश, अध्याय 10, पृ. 140.*

(7) *वही, पंचम अंश, अध्याय 7, पृ. 328.*

(8) *वही, अध्याय 13, पृ. 346.*

(9) *दास, श्रीकृष्ण, क्षेमराज (संपादक) : "श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणम्", नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985, खण्ड–3, अध्याय 2, श्लोक संख्या 1–4, पृ. 307.*

(10) *वही, श्लोक संख्या 5–9, पृ. 307–308.*

(11) *वही, अध्याय 17, श्लोक संख्या 56–63, पृ. 314.*

(12) *बख्शी, ज्योति : "कथक अक्षरों की आरसी", मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण 2000, पृ.127.*

(13) *दास, श्रीकृष्ण, क्षेमराज (संपादक) : "श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणम्", नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985, खण्ड–3, अध्याय 17, श्लोक संख्या 6–55, पृ.314.*

(14) *वही, अध्याय 17, श्लोक संख्या 32–35, पृ. 316.*

(15) *वही, श्लोक संख्या 37–54, पृ. 316.*

(16) *वही, श्लोक संख्या 54–62, पृ. 316.*

(17) *वही, अध्याय 21–26, पृ. 316–320.*

❁❁